जीव–अजीव

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

सृष्टि में मूल रूप से दो तत्व है– जीव और अजीव। जीव और अजीव को समझ लेने वाला आत्मज्ञानी हो जाता है। अहिंसा को समझने के लिए जीव और अजीव का ज्ञान होना आवश्यक है। हम इस संसार में कैसे आते हैं? मैं कौन हूँ? आत्मा क्या है? जीवों की उत्पत्ति कैसे होती है इत्यादि विषयों का विवेचन करना आवश्यक है। आत्मा चार गतियों में भ्रमण करती है। चौरासी लाख जीव योनियों में सब में आत्मा समान रूप से रहती है। कर्मों के कारण शारीरिक भेद दिखलाई देता है। कोई व्यक्त चेतना वाला होता है, कोई अव्यक्त चेतना वाला। अधिकांश जीव गर्भज होते हैं। जीव नौ महिनों तक माता के गर्भ में रहकर चयापचय की क्रिया से गुजरता है। कार्मण शरीर पौद्गलिक है। तेजस शरीर एक जन्म से दूसरे जन्म में मनुष्य को ले जाता है। अन्त मति सो गति अर्थात जीव के मरते समय जैसे भाव होते हैं, वह वैसा ही जन्म प्राप्त करता है।

जैन दर्शन में दो मुख्य तत्त्व हैं– जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य। जीव या आत्मा जैन दर्शन में एक स्वतंत्र द्रव्य है। इसका लक्षण है–चेतना। चेतना को जीव का असाधारण धर्म बतलाया गया है–चेतना लक्षणो जीवः। अजीव द्रव्य वे द्रव्य हैं जिसमें चेतना नहीं होती। अजीव द्रव्य के पांच भेद है– पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। यह विश्व छह द्रव्यों की रचना है। इसमें दो प्रकार के जीव है– मुक्त जीव और संसारी जीव। मुक्त जीव को परमात्मा, ईश्वर, सर्व शक्तिमान ,सिद्ध, शुद्ध जीव, आदि नाम से जाना जाता है। इन मुक्त जीवों के अतिरिक्त सभी जीव संसारी जीव हैं। अजीव दव्यों में पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य आते हैं। सृष्टि की रचना इन्हीं द्रव्यों के सहयोग से हुई है।

जैन दर्शन में षड्जीवनिकाय का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। षड्जीवनिकाय के अन्तर्गत पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक जीवों

की गणना होती है। जैन दर्शन में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति को जीव माना गया है। ये सभी मिलकर पर्यावरण की रचना करते हैं तथा संतुलन बनाये रखने के लिए एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। किसी एक तत्त्व के असंतुलन से समूचा पर्यावरण प्रभावित होता है। अतः भगवान महावीर ने कहा विवेकी मनुष्य, पृथ्वी, जल आदि की हिंसा के परिणाम को जानकर न स्वयं इनकी हिंसा करें, न दूसरों से इनकी हिंसा करवाएँ और न ही हिंसा करने वालों का अनुमोदन करें। पृथ्वी, जल आदि की हिंसा करने वाला केवल इनकी ही हिंसा नहीं करता अपितु इनके आश्रित अनेक त्रस जीवों की भी हिंसा करता है। इन षड्जीवनिकायों की हिंसा नहीं करने का जैन दर्शन के निर्देश है।

पृथ्वी ही जिनका शरीर है ऐसे जीवों को पृथ्वीकायिक जीव कहा जाता है। वह अनेक जीव और पृथक् सत्वों वाली है। शस्त्र परिणति से पूर्ण वह सजीव कही गयी है। आज अनेक प्रकार के खनिज पदार्थों के लिए पृथ्वीकाय की हिंसा की जाती है। जल में रहने वाले जीव, जैसे मछली एवं अन्य प्राणी उस प्रदूषण से प्रभावित होते हैं। उन्हीं जंतुओं का प्रयोग जब मनुष्य खाने के लिए करता है तो वह विषाक्त भोजन अनेक बीमारियों का कारण बनता है। अग्निकाय का असंयम करने से ऊर्जा के स्रोत कम हो रहे हैं। इससे उद्योग, चिकित्सा आदि सभी क्रियाकलाप प्रभावित हो रहे हैं। वायु–प्रदूषण में भी अग्निकाय का असंयम ही अधिक निमित्त बन रहा है। वायुमण्डलीय प्रदूषण केवल मानव के लिए ही नहीं अपितु प्राणी मात्र के लिए हानिकारक है। इस प्रकार पृथ्वी, जल आदि की हिंसा आध्यात्मिक दृष्टि से ही नहीं, पर्यावरण की दृष्टि से भी अवांछनीय है। आचारांग सूत्र में वनस्पति और मनुष्य के जीवन में बहुत सारी समानताओं का उल्लेख कर उनकी हिंसा से विरत रहने का निर्देश दिया गया है। प्रकृति की दृष्टि में एक पौधे का जीवन भी उतना ही मूल्यवान है, जितना एक मनुष्य का है। पेड़–पौधे पर्यावरण को प्रदूषण से मुक्त करने में जितने सहायक हैं, उतने मनुष्य नहीं हैं, वे तो पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं। श्रावक के लिए भी वनस्पति के यथाशक्ति सीमित उपयोग का निर्देश है। वनों को काटना, वनों में आग लगाना आदि क्रियाओं में महापाप माना गया है, क्योंकि उसमें न केवल वनस्पति की हिंसा होती है, अपितु अन्य वन्य–जीवों की भी हिंसा होती है और पर्यावरण भी प्रदूषित होता है।

जिन जीवों में हलन–चलन एवं गमन की क्रिया होती है उन्हें त्रस जीव कहते हैं। जो संत्रस्त होते है, उद्विग्न होते हैं, संकुचित होते हैं, डरते हैं तथा त्रस आदि अवस्थाओं में जो इधर–उधर पलायन करते हैं, यह भी त्रस जीवों का लक्षण है। ये तीन प्रकार के है– सम्मूर्च्छनज, गर्भज, औपपातिक। रसज, संस्वेदज और उद्भिद् ये तीन सम्मूर्च्छनज हैं। सम्मूर्च्छनज का अर्थ है गर्भाधान के बिना ही यत्र–तत्र आहार ग्रहण कर शरीर का निर्माण करना। अंड़ज, पोतज और जरायुज ये गर्भज जीव हैं। उपपात से जन्म लेने वाले देव और नारक औपपातिक कहलाते हैं। त्रसकायिक जीव अंध, बधिर, मूक, पंगु और अवयवहीन मनुष्य की भांति अव्यक्त चेतना वाले होते हैं। शस्त्र से छेदन–भेदन करने पर जैसे जन्मना इन्द्रिय विकल मनुष्य को कष्टानुभूति होती है, वैसे ही त्रसकायिक जीवों को भी होती है।